दार्शनिक चिन्तन में योग साधना का महत्व

संतोष कुमार शुक्ल
शोध छात्र

दर्शनशास्त्र
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),
प्रयागराज

डॉ0 अरविन्द शुक्ल (एसोसिएट प्रोफेसर)

शोध निर्देशक
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र एवं योग विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),
प्रयागराज

डॉ0 गोविन्द प्रसाद मिश्र (एसोसिएट प्रोफेसर)

(सह–शोध निर्देशक)
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
आईजीएनटीयू केंद्रीय विश्वविद्यालय
अमरकन्टक, मध्य प्रदेश

दुनिया भर में प्रचलित योग की अवधारणाओं का प्रस्फुटन भारतीय चिन्तनशास्त्र से ही हुआ हैं। एक सभ्य समाज के लिए अपने परिवार, जाति, समुदाय, क्षेत्र, राष्ट्र, भाषा और धर्म के भीतर अपनी उपलब्धि की भावना खोजने की मानवीय प्रवृत्ति केवल दूसरों के लिए अराजकता का कारण बनेगी। उनके विशेष संदर्भ ढांचे में, यह पूरी खोज किसी की पहचान खोजने के बारे में है, न कि शाश्वत शांति के बारे में। दुनिया में चल रहा लोकप्रिय विमर्श धर्म, देश और समुदाय के लोकलुभावन नारों से निर्देशित है। यह स्वार्थी है, भ्रामक है और एक–दूसरे को ऊँचा उठाने की बात है। अक्सर, धर्म और न्याय के नाम पर तथाकथित पहचान की लड़ाई के लिए समर्थन मांगा जाता है। क्या हमारे पास सामाजिक समता और समता प्राप्त करने की कोई अन्य पद्धति है? क्या कोई एक पद्धति है जिसका अनुसरण संपूर्ण मानव जाति कर सकती है? एक ऐसी पद्धति जो किसी राष्ट्र और उसके लोगों की एकता और अखंडता को नष्ट नहीं करती। एक ऐसी पद्धति जिसे हर व्यक्ति जीवन में परम सुख, शांति और आनंद प्राप्त करने के लिए अपना

सकता है और अभ्यास कर सकता है। हाँ, हमारे पास एक ऐसा ऐप है जिसका पालन उपरोक्त सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए दुनिया भर के सभी लोग निडर और स्वतंत्र रूप से कर सकते हैं। यह कोई और नहीं बल्कि संत पतंजलि का अष्टांग योग है। अष्टांग योग ही है जो इस संसार में चल रहे खूनी युद्धों को रोक सकता है। यह सांसारिक से लेकर उच्चतम स्तर तक जीवन के हर चरण और चरण से संबंधित है। यह न केवल रोजमर्रा की गतिविधियों में बल्कि ध्यान और समाधि के उच्चतम चरणों तक पहुंचने में भी मार्गदर्शन करता है। स्वयं की पहचान और परम सत्य की खोज करने वाले किसी भी व्यक्ति को अष्टांग योग का अभ्यास करना चाहिए। योग वास्तव में किसी के भौतिक और आध्यात्मिक उद्देश्यों को पूरा करने का एक आसान, सरल और सबसे प्रभावी तरीका है। यह हमारे भीतर सुप्त आंतरिक दृष्टि को जगाता है। आंतरिक दृष्टि से रहित व्यक्ति शाश्वत शांति की ओर ले जाने वाले धार्मिक जीवन के उच्च मार्ग को अपनाने के बजाय, सुख की तलाश में कांटों से भरे आकर्षक मार्ग पर चलता है, जो केवल विनाश की ओर ले जाता है। ऐसे व्यक्ति का न तो यह जीवन सुधरता है और न ही अगला जीवन। योग मन को पूर्वाग्रहों, अहंकार, अनम्यता और गलत धारणाओं से मुक्त कर सकता है जो व्यक्तिगत और इस प्रकार समुदाय और राष्ट्र के विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएं हैं। योग मन को दिव्यता से भर देता है, उसे पहाड़ से भी अधिक स्थिर और समुद्र से भी अधिक गहरा बना देता है। योग का अभ्यास अवसाद के समय शांति प्रदान करता है। यह सभी शंकाओं और शंकाओं को दूर करता है और परम आनंद की प्राप्ति का आश्वासन देता है। विश्व का इतिहास ऐसे लोगों की कहानियों से भरा पड़ा है जो योगाभ्यास से आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करने में सफल रहे। ऐसे महान व्यक्तित्वों ने समाज में व्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, अप्रसन्नता की नकारात्मक भावनाओं से छुटकारा पाया और धरती पर शांति लायी। साहित्य, दर्शन, विज्ञान, धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में हुई भारी प्रगति केवल कुछ दृढ़ व्यक्तियों के ध्यान, एकाग्रता और कड़ी मेहनत के कारण ही संभव हो पाई है। आध्यात्मिक सत्य और छिपे रहस्यों को समझने के लिए हमें उच्च स्तर की एकाग्रता और समर्पण की आवश्यकता है। साथ ही दुनिया को आविष्कारों से जगमगाने और प्रकृति के रहस्यों से पर्दा उठाने वाले वैज्ञानिकों की एकाग्रता को भी कम नहीं आंका जा सकता। यदि वे लोग जिन्होंने मंत्रों पर चिंतन करते हुए अस्तित्वगत प्रश्नों के उत्तर खोजे, वे ऋषि हैं, तो वैज्ञानिक जो नई खोज करते हैं और प्रकृति के नियमों की खोज करते हैं, वे भी ऋषि हैं। जो व्यक्ति पूरी एकाग्रता और जागृत चेतना के साथ विभिन्न कार्यों को पूरा करता है वह ऋषि के समान कार्य

> **जो व्यक्ति पूरी एकाग्रता और जागृत चेतना के साथ विभिन्न कार्यों को पूरा करता है वह ऋषि के समान कार्य करता है। परमात्मा की अनुभूति से युक्त ज्ञानी ही वास्तविक ज्ञानी माना गया है। जिस साधना द्वारा आध्यात्मिक सत्ता का यथार्थ रूप से अनुभव और साक्षात्कार होता है उसे ही योग कहा गया है। योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र–ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है।**

करता है। ऐसा लोगों में निरंतर जागरूकता है और वे हमेशा नई ऊंचाइयों तक पहुंचने का प्रयास कर रहे हैं; उन्हें अग्रणी कहा जाता है। भारत के अनमोल ग्रंथ जैसे ब्रह्मसूत्र, आरण्यक, उपनिषद और चिकित्सा, ज्योतिष पर क्लासिक ग्रंथ सर्वोच्च ज्ञान का परिणाम हैं। ज्ञान–अविद्या, स्वर्ग–आदि द्वन्द्वों के स्वरूप विषयक ग्रन्थ भारतीय साहित्य शास्त्र में प्रचुर मात्रा में उपल्ध हैं।

रत्नगर्भा भारतीय वसुन्धरा ने यहाँ के निवासियों को प्रचुर धन–धान्य सम्पन्न जिस परिवेश को प्रदान किया, वह आध्यात्मिक चिन्तन हेतु पूर्णतया अनुकूल था। परिणामस्वरूप यहां के आदिकालीन ऋषि मुनि मात्र भौतिक वस्तुओं के ज्ञान से ही सन्तुष्ट नहीं हुए, अपितु उनके हृदय में "यह दृश्यमान जगत् क्या है", "कहां से आया", "कहां जायेगा", "मैं क्या हूँ", "क्या शरीर के साथ मेरी उत्पत्ति व समाप्ति निश्चित है" आदि प्रश्नों के विषय में जिज्ञासा हुई। ऋग्वेद में मानव हृदय की इस जिज्ञासा का अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक रूप से विवेचन किया गया है।[1]

कि स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।

अर्थात–"वह कौन सा वन है और कौन सा वह वृक्ष है जिससे द्युलोक पृथिवी– लोक (और इस दृश्यमान विशाल जगत्) की विधाता ने रचना की होगी। इसी प्रकार नासदीय सूक्त में कहा गया है कि–[2]

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्, कुत आजाता, कुत इयं विसृष्टिः।

अर्थात कौन जानता है और कौन यह बता सकता है कि यह जगत कहां से और कैसे उत्पन्न हुया और कहां जा रहा है।

इन्हीं प्रश्नों के समाधान स्वरूप जिन तथ्यों अथवा सिद्धान्तों का निरूपण किया गया उसे "दर्शन–शास्त्र" की संज्ञा दी गयी। इस प्रकार अनादि काल से सत्यानु– सन्धान के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये प्रयोगों का इतिहास ही "दर्शन–शास्त्र" का इतिहास है ।

प्राचीन वांङगमय के आलोचन से हमें यह विदित होता है कि प्राचीन दार्शनिक इस सत्यानुसन्धान के प्रयास में तार्किक बुद्धि द्वारा स्थापित सिद्धान्त मात्र को ही पूर्णतया प्रमाणिक नहीं मानते थे, अपितु उनकी मान्यता यह थी कि ये सिद्धान्त आध्यात्मिक अनुभव द्वारा परीक्षित हों–अर्थात् (जल में) प्रतिबिम्बित (वृक्ष की) शाखा के अग्रभाग में लगे हुए फल के आस्वादन से प्रसन्न होने के समान, मूर्ख व्यक्ति बिना अनुभूति के ही मैंने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया, ऐसा अभिमान कर व्यर्थ में ही प्रसन्न होता है।[3]

अनुभूतिं बिना मूढ़ो वृया ब्रह्मणि मोदते। प्रतिबिम्बितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत्।।

इसी विचार की पुष्टि ईशोपनिषद् में इन शब्दों के माध्यम से की गयी है–

जो अविद्या की उपासना करते हैं वे तो अज्ञान–स्वरूप अन्धकार में प्रवेश करते ही हैं, परन्तु जो विद्या में रत हैं, वे भी अन्धकार में प्रवेश करते हैं।[4]

तात्पर्य यह है कि जो भौतिक सुखों के प्रति आसक्त हैं, वह तो अन्धकार मार्ग पर हैं ही, परन्तु जिन व्यक्तियों ने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर स्वयं को परमात्मज्ञानी समझा है, वे और भी अन्धकार में गमन करते हैं, क्योंकि शास्त्र–ज्ञान से अनिर्वाच्य परमात्म स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः परमात्मा की अनुभूति से युक्त ज्ञानी ही वास्तविक ज्ञानी माना गया है। जिस साधना द्वारा आध्यात्मिक सत्ता का यथार्थ रूप से अनुभव और साक्षात्कार होता है उसे ही योग कहा गया है। योग के इसी माहात्म्य के कारण गीता के निम्न श्लोक द्वारा योगी की सर्वोत्कृष्टता बतायी गयी है–

अर्थात् योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र–ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन! तू योगी बन।[5]

तपस्विभ्यो अधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कमिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

सुर, नर, तिर्यक, प्रेतादि जन्ममरणरोगादि से संतप्त समस्त प्राणि–निकायों को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि वह इस शरीर से परमात्मस्वरूप का अनुभव कर कैवल्य की प्राप्ति कर सके। श्मनसे वेदमाप्तव्य'[6] के अनुसार शरीर में स्थित मन के द्वारा परमात्म–दर्शन किया जा सकता है। आदि श्रुतियों की उक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि, चित्त (मन, बुद्धि) तथा शरीरादि से युक्त जीव आत्मज्ञान प्रकाशन में समर्थ है, तथापि बाह्य विषयों एवं रोगादि से उपरोक्त चित्त में अबोध रूप से ज्ञान का प्रकाश नहीं हो पाता। अतः "दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि"[7] श्रुति की इस उक्ति के अनुसार विशुद्ध बुद्धि अथवा चित्त में उत्पन्न ज्ञानप्रकाश द्वारा ही आत्मदर्शन किया जा सकता है। सम्पूर्ण योग शास्त्र में इसी चित्त अथवा जीव की स्वाभाविक शक्ति के उन्मीलन के हेतु साधन अभिहित हैं। योग–शास्त्र में बतायी गयी विधि का अनुसरण करने पर जीव में विद्यमान समस्त दोष एवं मलिनतायें तिरोहित हो जाती है । इस प्रकार जीव आत्म साक्षात्कार में समर्थ हो जाता है। यौगिक विधि द्वारा चित्त–शोधन पूर्वक आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया को इस उपमा द्वारा सम्यक् रूप से समझा जा सकता है– किसी पात्र में जल डालकर उसमें स्वर्ण–कण डाल दिये जाएँ। यदि जल शुद्ध एवं निश्चल हो तो उन्हें देखा जा सकता है, परन्तु उसमें यदि मिट्टी मिली हो तो वे स्वर्ण–कण या तो दिखाई ही नहीं देगें अथवा दिखाई देंगे तो विकृत रूप में उनको देखने के लिए ऐसा उपाय करना होगा कि जिससे जल में स्थित मिट्टी निकल न जाय तो कम से कम बैठ जाय एवं जल निश्चल हो जाय। आत्मा सोने की भांति ही शुद्ध, बुद्ध, चौतन्य है। हम शुद्ध जल रूप चित्त से उसका साक्षात्कार कर सकते हैं। जल के मिट्टी को ही भांति चित्त रूपी जल में कामक्रोधादि वासनायं एवं पुराने संस्कार स्थित हैं। जिन्हें मल कहा जाता है। दूसरा दोष यह है कि प्रतिक्षण विभिन्न वृत्तियों में परिणत होने के कारण चित्त चंचल रहता है चित्त के इन दोषों का योग द्वारा उपशमन किया जाता है। इस प्रकार योग कोई नवीन शक्ति नहीं प्रदान करता और न ही कोई नवीन योग्यता उत्पन्न करता है, अपितु विशिष्ट विधि द्वारा

आत्मदर्शन के मार्ग में चित्त द्वारा उत्पन्न हुई बाधा को दूर करता है तथा जिस दर्पण में परमात्मस्वरूप को देखा जा सकता है उसे ही स्वच्छ कर देता है।[8]

अध्यात्म–सत्ता का साक्षात्कार कराने के कारण अध्यात्मजगत् में योग का स्थान उस केन्द्र के समान है जहां सम्पूर्ण दार्शनिक एवं धार्मिक सम्प्रदाय समान रूप से आकर मिलते हैं। प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय के जिज्ञासु साधकों ने योग की मुक्तकंठ से प्रशंसा की और उसका अवलम्बन लेकर अन्य जिज्ञासुओं एवं साधकों को भी साधना रूप में उसके अनुसरण की प्रेरणा दी। इसीलिए अपने "वेदान्त भाष्य" में योगदर्शन का खण्डन करते हुए भी "शंकराचार्य" ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यौगिक क्रिया का खण्डन उनको अभीष्ट नहीं। स्वयं सूत्रकार व्यास ने "आसीनः सम्भवाद" जैसे सूत्र से इस ओर संकेत किया है।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची</u> :–

1. ऋग्वेद 10/27,
2. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त,मन्त्र 6
3. मैत्रेय्युपनिषद्, 23
4. ईशोपनिषद् 9
5. गीता,6/46
6. कठोपनिषद्, 2/1/11
7. कठोपनिषद्, 1/3/12
8. तु. तस्मिश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ताः प्रतिविम्वन्ति सरसीव तटद्रुमाः विष्णुपुराण
(साख्यप्रवचनभाष्य में उद्धृत)